पंचम अंक

(यज्ञ-मंडप। शुक्राचार्य और बलि को घेरकर बाणासुर, कालनेमि आदि खड़े हैं)

शुक्राचार्य—

स्वस्थ सुखी सब हों विवेकमय, ऋद्धि-सिद्धि घर-घर छा जाय
शत वसंत, शत शरद, ग्रीष्म शत, जिये अदीन असुर समुदाय
सबल राष्ट्र गुणियों से पूजित, पुष्ट वृषभ हों दोग्ध्री गाय
कोटि कल्प स्वर्गासन भोगे, शुद्ध, बुद्ध, बलि ज्योतिर्काय
योगपूत आत्मा दीपक-सी जले, जलाती कलुष-कलाप
पवन-धूम हो, मेघ घिरें फिर, शस्य खड़े हों अपने आप
वाणी लौट-लौट आती है रुद्ध इंद्रियों का व्यापार
कोटि भानु सा ज्योतिर्मय है, देवि! तुम्हारा सिंहद्वार
अयि जगधात्री! महाचेतने! अहंकार-वारुणी पिये
नूतन सृष्टि रचो, मायामयि! अणु-अणु को ब्रह्मांड किये
नये इंद्र, नव वरुण, चंद्र, रवि, उगें नवल ग्रहलोक अनेक
पतित पुरातन के आसन पर नूतनता का हो अभिषेक
रहो सदा शक्तियो शून्य की! बलि की आज्ञाकारी हो
तुम जड़ हो अथवा चेतन हो, नर हो अथवा नारी हो

(चर का प्रवेश)

चर—सप्त तलातल भेद शून्य के चरम बिंदु को
तीन लोक, चौदहों भुवन को, सप्त सिंधु को
परम व्योम के त्रिगुण-विवर्जित पथ से चलके
गये देवगण विष्णु-धाम की ओर विकल-से
आगे कुलपति वृद्ध थे, सुरगुरु और सुरेंद्र भी
पीछे सुरसेना सकल, देखा है मैंने अभी

(दूसरे चर का प्रवेश)

दूसरा चर— शस्त्र प्रखर किरणों में जिनके चमक रहे थे
मुख प्रसन्नता की आभा से दमक रहे थे
क्षीरसिंधु से लौट रहे थे सुरगण ऐसे
मत्त स्वपुर को, मानो कोई वीर विजय से
स्वर्गलोक का राज्य ही जैसे उनको मिल गया
ऐसी हुंकृतियाँ भरीं, नभ का आसन हिल गया।

(तीसरे चर का प्रवेश)

तीसरा चर—कल्पवृक्ष की सबसे ऊँची शाखा पर से
देखा मैंने ज्योति एक उतरी अंबर से—
सद्य:जात दिवस-सी, क्षण में फिर क्या देखा!
मूर्ति चतुर्भुज बनी चमक कर वह द्युति-लेखा
सहसा मूर्ति चतुर्भुजी, छिपी गरुड़ की पाँख में
वामन एक खड़ा हुआ लिये कुशासन काँख में

शुक्राचार्य—(घबराकर)

चतुर्भुजी मूर्ति! विष्णु! वह चतुर्भुजी मूर्ति और कोई नहीं, विष्णु ही हैं। बलि! शीघ्रता करो, यह देवताओं का षड़यंत्र जान पड़ता है। विष्णु को उन्होंने अपनी सहायता के लिये तत्पर किया है—और वह विष्णु तो सदा से दैत्यों को छलता आया है। पर मैं इस बार दैत्यों के मुख का ग्रास, इंद्रत्व उसे नहीं छीनने दूँगा (दूतों की ओर मुँह करके) जाओ तुम लोग अपने-अपने स्थान से तीनों लोकों की गतिविधि का निरीक्षण करो और कोई विशेष समाचार होने पर तुरत सूचित करो।

(दूतों का प्रस्थान)

(बलि से)

शीघ्रता करो, दानवराज!

(चर का प्रवेश)

चर— सुरगुरु-सेव्य कमंडल बाँयें कर में, दहने
घटज-दत्त मृगचर्म, पादुका नृग की पहने
उर उपवीत पुनीत, पीत पट चतुरानन का
कटि में बसु-मेखला, रोषमय भाव नयन का
छत्र देवपति का तना, मस्तक पर ढुलते चँवर
वामन एक खड़ा, प्रभो! दर्शन के हित द्वार पर

बलि— विप्र और याचक के लिए बलि का द्वार सदा खुला है। उसे सादर ले आओ।

शुक्राचार्य— बलि! सावधान

(चर का छत्रधारी-सेवित वामन के साथ प्रवेश। सभी विस्मित-से उसकी ओर देखने लगते हैं)

वामन—राक्षसराज! मैं अग्नि का उपासक ब्राह्मण हूँ। अपने इष्टदेव को मैं दूसरे की भूमि में स्थापित नहीं कर सकता अत: मुझे तीन पग भूमि चाहिए।

बलि— तीन पग भूमि!

शुक्राचार्य— तीन पग भूमि!

बाणासुर—तीन पग भूमि! हाऽ हाऽ, देखो इस वामन की बुद्धि भी इसके शरीर जितनी ही छोटी है। तीन पग भूमि में तो सो जाने पर पाँव भी नहीं पसारे जा सकते, क्षुद्रक! तीन नगर तो माँगे होते कम से कम।

बलि— विप्रवर तीन नगरों की तो विसात ही क्या
याचक के हित आज तुच्छ तीन लोक भी
तीन पग से हैं मुझे, साक्षी अग्नि-कुंड यह,
दुग्धवती कोटि लक्ष धेनु, ग्राम, शस्य, भूमि
गज, अश्व, दास, मणि, माणिक, कुबेर के-से
भवन सुवर्ण के सुरेंद्र के भवन-तुल्य

वांछित जो माँगें आप, सौवें बलि-काल में
नहीं हैं अदेय आज मेरे लिये प्राण भी
कर के कुसुमवत्

वामन— धेनु, ग्राम, शस्य, भूमि
गज, अश्व, दास, मणि, माणिक कुबेर के-से
भवन सुवर्ण के उन्हींको, देव! दीजिये
दौड़े फिरते जो मृगतृष्णा में विभव की
पागल से बनकर, समर्थ ब्राह्मनत्व-अर्थ
अर्थ अर्थहीन है अनर्थ मूल सर्वदा।
तीन पग भूमि है अलम् जीवधारियों को
राज्यलिप्सु को तो तीन लोक भी न पूरे हैं।

बलि— ऐसे शुभलग्न में प्रदाता मुझ-सा है जब
याचक हैं आप से, याचित तीन पग भूमि
ढोल पीट-पीट भाग्यहीनता जताती है
मंदभागियों की, महासिंधु-तट जाकर भी
लाते हैं दरिद्री जल अंजलि-प्रमाण ही,
कौड़ी ही कंगाल ढूँढ़ता कुबेर-गृह में
सहसा प्रविष्ट होकर, फिर एक बार आप
कीजिये समझ-सोच कोई बड़ी याचना
तीन पग भूमि से, अदेय नहीं, देव! मुझे
सत्य कहता हूँ तीन लोक जय-लग्न में
आज इंद्रत्व के, सुदूर पितृलोक से
भेजते हैं पूर्वज भी जैसे सुभाशीष सी
इस साफल्य पर, हुआ था जो न आज तक
होगा वह आज एक क्षण-उपरांत ही
भार्गव की शक्ति से

वामन— सम्राट् ठीक कहते हैं
होगा वह आज जो हुआ था नहीं आज तक
क्षण-उपरांत ही, परन्तु मुझे याचना
और नहीं कोई करनी है सम्राट् से
फैलाकर हाथ

शुक्राचार्य— सावधान दैत्यराज! यह
छल है महान्, देवताओं का कुचक्र, मुझे
गंध आ रही है किसी सूक्ष्म षड़यंत्र की।
वामन बटुक देखते हो जो समक्ष खड़ा,
छद्मवेष-धारी शेषशायी विष्णु आप हैं।
देखो भृगुलता घनश्याम-अंक-मध्य छिपी
चमक रही है बंक द्वाभा के मयंक सी,
छत्र है सुरेंद्र ही तना दीप्त भाल पर,
पीत-पट-छोर में खुदे हैं वर्ण सत्य के
श्वेत अक्षरों में

बलि— आर्य! धृष्टता क्षमा करें
विष्णु जिन्हें आप कहते हैं मुझको तो वह
एक दीन, बुद्धिहीन दिखता भिखारी है,
तीन पग भूमि ही बड़ी है जिसके लिये,
तीनों लोकों-सी, राजनीति में क्या गुरुवर!
नास्ति में भी अस्ति का आरोप किया जाता है
तर्कशास्त्र में ज्यों, कहें विष्णु आप भिक्षुक को
शंका भी न हँसती क्या होगी इस शंका पर
नि:शंक होकर!

शुक्राचार्य— अजान कूटनीति से
सरल-हृदय तुम जानते नहीं हो, बलि!
छल देवताओं का, महान सृष्टि-चक्र यह

जितना सरल दिखता सरल-हृदयों को
कुटिल है उतना ही वक्र बुद्धि के लिये।
भुलो नहीं वत्स! यह विश्व नहीं वैसा कभी
जैसा देखते हैं हम, बुद्धि ही प्रमाण है
इस माया-पथ में

बलि— परंतु सत्य, न्याय क्या
शब्दपुंज रीते घट से हैं सारहीन ही?
बुद्धि निष्पक्ष है भले या बुरे के लिए
रवि के प्रकाश सी?

शुक्राचार्य— नहीं, परंतु दैत्यराज!
बुद्धि का चमत्कार, विश्व की विभिन्नतायें,
भले या बुरे में, दृष्टिकोण ही का भेद है।

वामन— तो क्या लौट जाऊँ मैं निराश यज्ञ-मंडप से,
आशा भरा आया जो

शुक्राचार्य— अवश्य कृपा कीजिये
तीन पग तो क्या तीन कण भी नहीं है यहाँ
दान-हित आपके

वामन— बने क्यों मौन दैत्यराज!
बोलो अब तीन पग भूमि हुई भारी है?
अकड़ गई कहाँ तुम्हारी वह गर्वभरी?
यह माँगो, वह माँगो, कहते थे दैत्यपति!
इतने-से मन और इतनी-सी शक्ति पर!
देते थे कुबेर की सुमेरु-संपदा तुम्हीं!
जीवन भी तुच्छ तृण-सा था तुम्हें, महाराज!
याचक के हित, दानवों के सम्राट्! तुम
शिवि, हरिश्चन्द्र की, दधीचि की बराबरी
करने चले थे, अब मौन बोलते न क्यों?

तीन पग भूमि में भी शंका, कभी धर्म-हेतु
मानवों ने हँस-हँस किया था प्राण-दान भी
और वे थे मानव ही, किंतु श्वेत अश्व यह
विजय-किरीट-छत्र, लब्ध इंद्रत्व भी
व्यर्थ जो निरर्थ फिरे विप्र यज्ञ-कुंड से
भग्न-आश, क्रुद्धमन,

बलि— क्षमा करें विप्रवर!
दूँगा वांछित मैं अभी ही, इसी क्षण ही।

(दान करने के लिए जल की स्वर्णिम झारी उठाता है)

शुक्राचार्य—यह क्या सम्राट! भावनाओं के बने यों दास
पानी फेर दो न सब किये-कराये पर।
जीवन में हँसती सफ़लतायें एक बार,
बँधता है एक बार सेहरा विजय का
विजयी के भाल पर, गँवाकर शुभ अवसर
मूढ़ निज कृत्य से हैं दोष देते भाग्य को।
छली देवताओं ने चली है यह चाल, बलि!
खोओ सर्वस्व नहीं सिद्धि-लाभ-क्षण में
नृग-से, ययाति-से

बलि— परन्तु हाय गुरुवर!
लेकर इंद्रत्व क्या करूँगा जो कहेंगे लोग
तीन पग भूमि मैं भिखारी को न दे सका।
विष्णु जिन्हें आप कहते हैं, रमानाथ वही
आज यदि द्वार मेरे याचक हो आये हैं,
कोटि इंद्रत्व, ब्रह्मत्व भी निछावर हैं
ऐसे बड़े भाग्य पर, परन्तु आप सोच देखें
विष्णु का सदा से मैं रहा हूँ दास, बैरी बने

मेरे मूल में ही वे कुठार क्यों चलायेंगे,
और फिर तीन पग भूमि ले सुरेन्द्र भला
मेरा कर लेगा क्या, भगा जो स्वर्ग-लोक की
अंतहीन भूमि छोड़

शुक्राचार्य— हाय री सरलते!
चाहती नहीं है चलना तू आँख खोलकर
खाई-कूप भरे महा वक्र सृष्टि-पथ में
ठोकरें भले ही लगें, भूले मृषा ज्ञान में
निज को सँभालो, सम्राट्! है समय अभी
भूल को सुधारने का, मंत्रित भुजंग से
कूद अग्नि-कुंड में न आत्म-बलिदान दो
भूमि-संकल्प कर हरि को, हुआ क्या, हाय
आज, महाराज! तुम्हें, गुरु के वचन भी
सूने-से हो सुनते, विमूढ़-से, बिके-से

वामन— देर क्या है दैत्यपति?

बलि— आर्य! अल्पमात्र नहीं।
क्षमा गुरुदेव! बलि, याचक के सम्मुख
याचना करेगा नहीं दिये हुए दान की
टेक निज घुटनों को, बुद्धि जहाँ शंकित हो,
अंतर की निर्मल प्रवृत्तियाँ प्रमाण हैं,
दौड़तीं वे दान के प्रशस्त पुण्य-पथ में
शंका के समूल कूल-विटप उखाड़ती
भीम निज बेग से, मुझे तो है प्रतीति यही
भले को भला है, बुरे को ही मिलता है बुरा,
कंटक को कंटक, कुसुम को कपोल हैं।

(झारी लेकर संकल्प के लिए जल लेना चाहता है)

शुक्राचार्य— देखता हूँ मैं कि होनी होकर ही रहेगी आज
खोकर ही रहेगा सर्वस्व बुद्धिहीन तू!
मूढ़! गुरुद्रोही! जा रहा हूँ देखूँगा मैं नहीं
महानाश आज हिरण्याक्ष के कुटुम्ब का
अपने ही सामने, क्षणिक अनजानी भूल
युग-युग देती परिताप देहधारी को
मृत्यु-यंत्रणा सा, मूर्ख! फूल रहा जिस पर तू,
सोहता है दर्शन भी स्मितिभरे अधरों पर,
रोते हुए नयनों का वह उपहास है

(प्रस्थान)

बलि— गुरुदेव! गुरुदेव!

वामन— क्यों असुरराज! क्या
गुरु बिना होना संकल्प असंभव है
तीन पग भूमि का?

बलि— नहीं, परंतु भिक्षुवर!
धड़कता मन, वाम नेत्र है फड़क रहा
अशुभ-घटा-सी दीखती है घिरी नभ में
शांत भी भयावनी-सी, देखो अग्नि-मालिकायें
यज्ञ-कुंड में से नागिनी-सी लंबी लाल-लाल
जिह्वा फैलाये लीलने को चली आ रहीं,
धूम-घटा प्रलय-पयोद-सी घिरी है आज
सारे नीलाकाश में, कड़कती हैं वज्र-सी
श्वेतपक्षी शंपायें विदीर्ण कर दिशाओं को।
आह गुरुदेश!

वामन— दैत्यपति! वे तुम्हारे गुरु
अंक में मयंक के कलंक के-से अंक थे

बलि— होते ही मयंक के निमिष अकलंक किंतु
महानाश निश्चित है सारी महासृष्टि का
ज्वाला-च्युत कीट क्यों

वामन— धड़क यदि उर में है
तो फिर 'नहीं' क्यों कहते हो नहीं दैत्यराज!
तीन पग भूमि को बचाकर तीनों लोक बीच
सुयश को धवल ध्वजा न फहराते क्यों?

बाणासुर— वामन बहुत है वाचाल यह

कालनेमि— महाराज!
जानो गुरुदेव का नहीं है अर्थहीन कभी,
अशुभ के हो रहे प्रकट सभी चिह्न हैं।
देखिये उगी है महाशून्य की अनंतता में
ज्वलित-वदन धूमकेतुओं की पंक्ति-सी।
रोते हैं शृगाल नभ-पार, भूमि विधवा-सी
बिलख रही है भग्न सिंधु-आरसी लिये,
बोलते उलूक हैं दिवस में ही भवनों के
उच्चतम शिखरों पर चंचु का प्रहार कर।

बलि— सूझता नहीं है कर्तव्य, ठीक होगा वही
कहते सभी जो किंतु वीर को वचन निज
जाना प्राण जाने-सा है दुखपूर्ण, भाल पर
गिरने दो बिजली के साथ नील अंबर को
वज्र-सा कड़ककर, धड़ककर हृदय तू
शांत हो सदा के लिए, चाहे ब्रह्मांड भी
तत्व-गुण-हीन मर्यादा छोड़ लय हो
अतल विराट में, महा नक्षत्र-पुंज ये
गिरें टकराकर किंतु निश्चय अटल है
आज बलिराज का विधाता के कुलेख-सा

(झारी से जल लेने का प्रयास करता है। झारी उलट देने पर भी जल की एक भी बूँद नहीं गिरती है। सभी चकित हो जाते हैं)

बाणासुर—आश्चर्य! रोकती है सत्ता भी अलक्ष कोई
डूबने के इच्छुक का पट ज्यों पवन परे
खींचता है तट से, उर्मिल छाया डालियों की
हिल-हिल करतीं निदेश नहीं आने का
अपने समीप

वामन— क्षुद्र कीट है समाया कोई
जल-नलिका में रोकने को दान दीन की
तीन पग भूमि का, चली जा कहीं और तू
ईर्ष्ये! महान् साम्राज्यवादियों के बीच
महा वैमनस्य-युद्ध-ज्वाला भड़काने तू,
भूखे हिंस्र कुक्कुरों में क्षिप्त मांसपिंड सी,
क्षुद्र यह वास उपयुक्त नहीं तेरे है।

(वामन हाथ के कुश की नोंक झारी की नली में डाल देता है। आर्तनाद। पहले रक्त की फिर जल की धारा गिरती है। बलि हाथ में जल लेकर और मंत्र पढ़कर तीन पग भूमि का संकल्प कर देता है। सहसा अंधकार छा जाता है। एक ज्योति ऊपर की ओर उठती हुई दिखाई देती है।)

बाणासुर— राई में सुमेरु ज्यों विशाल वट बीज में हो
रूप यह परम विराट् था छिपा कहाँ
वामन में वपु में, समा जो नहीं पाता अब
तीनों लोकों में, त्रिगुणों में, तीनों काल में
बढ़कर? अनंत शीश, नेत्र, वक्तृ, ज्वाल-जिह्वा,
बाहु हैं अनंत दिव्य आयुध धरे हुए
व्याप्त दस दिशाओं में, विराट् भीम श्याम पद
पूरे ब्रह्मांड को है चाहता समेटना
एक ही उड़ान में, तलातल वितल सप्त

फोड़ता चरण दूसरा अनंत शून्य में
सारी महसृष्टि को लपेटे लिये जा रहा
धूमकेतु-पंक्ति-सा, चिंघाड़ रहे दिग्नाग
सूँड़ को उठाये, कोल, कमठ, फणींद्र, देखो
कलमला चाहते अखंड ब्रह्मांड को
ग्रह-पिंड-अंबर के साथ छोड़ भागना
भीत महाप्रलय की शंका से

इंद्र— असुरपति!
आज प्रतिशोध का दिवस है

बलि— अरे ये कौन
देवराज इंद्र ही थे छत्रधारी-वेश में
छद्म-विप्र-रूप हरि पर चँवर झलते
कवच-रचित गौर कर से!

इंद्र—(अपना असली रूप धारण करके)
सम्राट्! देखो,
पहला चरण लाँघ भाल चतुरानन का
गया महाशून्य में, अपर में समष्टि है
नपी स्वर्गभूमि से ले सप्तम पाताल के
शेष-नाग-लोक तक, डग अभी तीसरा
शेष है द्विजेश का

(प्रकाश होता है)

(चर का प्रवेश)

चर— सम्राट् की विजय हो,
सहसा अतल से विराट् विश्वरूप एक
कोटि भानु-तुल्य देखा सबने निकलते
पग थे पाताल, शीश ब्रह्मलोक, मेरु-भुजा

अंगों में अपर ग्रह-तारा-लोक जलते
कच-मेघजाल, भृकुटि में महाकाल, धक-धक
भाल-अनल, मरुत्-श्वास चलते
यम-तीक्ष्ण-दशन, असुर-गण-असन
समुद्र थे वसन महाशून्य में उछलते

(दूसरे चर का प्रवेश)

दूसरा चर— ज्वालामुखी-स्फोट से अनंत द्वीप-पुंज जैसे
गलित कनक में सुमेरु-पार्श्व-वर्तिनी
डूब गयी महारक्त-प्रलय-समुद्र-मध्य
देव! मय-सहित समस्त दैत्य-वाहिनी

(तीसरे चर का प्रवेश)

तीसरा चर— उत्तर ध्रुवलोक से ले उदयाचल के
चंद्र-सूर्य-तारा-लोक तक नभो-व्यापिनी
धाराधर-धाविनी भुजंगिनी-सी वज्रहत
आर्य! शल्य-सेना हुई सारी धराशायिनी

(चौथे चर का प्रवेश)

चौथा चर— नाथ! स्वर्ग-राज्य में प्रविष्ट हुए सुरगण
तारकादि सेनापति खेत रहे रण में
महाकाल जिह्वा-सी फैली चली आ रही है
चाटती समस्त दैत्य-दानवों को क्षण में

(पाँचवें चर का प्रवेश)

पाँचवाँ चर—अमरावती के स्वर्ण-राज-भवनों पर, देव!
गरुड़-ध्वजा है फहरा रही पवन में
शेष नहीं एक भी असुर रक्षकों में अब
दूत और द्रोहियों को छोड़कर भवन में

बलि— राज्य गया स्वर्ग का, समस्त अभिलाषा गयी
इंद्र कहलाने की, सुमेरु गया तृण सा,
एक पूरी सृष्टि गयी सैनिक-सहायकों की
छोड़ असहाय मुझे, क्षण में हुआ सभी
एक दु:श्वप्न-सा, कहेंगे सभी मूर्ख मुझे
इस महानाश में, परन्तु कहाँ दोष था
मेरा! मैंने स्वर्ग निज बाहुओं से जीतकर
तीन लोक, चौदहों भुवन वश में किये,
फिर भी नहीं के तुल्य आज हूँ मैं, फिर भी हा!
मेरे भाग्य में न था सुरेंद्र-पद भोगना

बाणासुर—महाराज!

बलि— कैसी यह विडंबना है धर्म की!
भार्गव चिताते थे परन्तु जानता था कौन
तीन पग भूमि होगी बड़ी तीनों लोक सी
दान के समय? आह! क्रूर, क्रूर भाग्य! तू
खेलता है खेल कैसा मूर्खा महत्ता के साथ
लाकर जिसे पर्वत के उच्चतम शिखर पर
गहन अतल में ढकेलता तू क्षण में

(शुक्राचार्य का प्रवेश)

शुक्राचार्य—आँख फाड़-फाड़कर किये का फल देख अब
मूढ़ दानवेश! आज अपने ही सामने!
पाया हुआ स्वर्ग ज्यों, गँवाया तूने बुद्धिहीन!
निज हठ से ज्यों हाय! मिट्टी में मिला दिया
सारे दैत्यवंश को, विमूढ़, अविवेकी कौन
होगा ऐसा और सुरासुरों के पुराण में!
भाग्यहीन! रो अब सदा को राज्य-च्युत हो!

बलि— गुरुदेव, विजय-पराजय से मुक्त सदा
मेरा विश्वास सत्य-धर्म में अटल है।
व्यक्ति की पराजय से सत्य नहीं हारता है,
ऊँचा आदर्श है सदैव इतिहास से।
फिर भी मिलेगा कभी स्वर्ग यदि जीवन में,
धर्म के लिए मैं उसे फिर भी हार जाऊँगा।

(छठे चर का प्रवेश)

चर— पति-प्राणा विंध्याचली गूँथे हुए पुष्प-हार
आती इसी ओर सखियों से घिरी रथ में
महाउत्पात-भीत मूर्च्छित समायी, देव!
भूमि-मध्य, भग्न तारिका ज्यों व्योम-पथ में

बलि— गयी विंध्याचली भी मैं ठूँठ जैसा देख रहा
नहीं राज्य ही का, राज्यलक्ष्मी का नाश भी
पतझड़ के पत्र सा, भले ही कहे कोई इसे
मेरी हठधर्मी या सरलता पर न योग्य था
ऐसे क्रूर दंड के मैं, ऐसे महाताप के,
ऐसी यंत्रणा के, किंतु, किंतु, अब इति है,
प्रस्तर-हृदय हो असह्य सह डाला सभी
किन्तु पतिव्रता का वियोग यह विष का
घूँट अंतिम है

(आत्म-हत्या के लिए खड्ग निकाल लेता है)

वामन-वेष-धारी विष्णु — ठहरो अभी दैत्यराज!
दो ही पग पाये, डग तीसरी बताओ भूमि
मुझे निज वास को

इंद्र— शरीर अभी शेष है,
विप्रवर! नपने को दैत्य-सम्राट् का
तीसरे चरण में

बलि— शरीर! हाय, तो क्या आज
मृत्यु भी रहेगी अमरत्व-सी अलभ्य ही?
तीन-लोक-पति पाशबद्ध क्रीत मर्कट-सा
नर्तन करेगा हास-ध्वनियों पर स्वर्ग के
क्रूर देवताओं की, दिखायेंगी सहास मुझे
वृद्धायें चपल शिशुओं के नन्हें हाथ धरे
सघन पथों पर अमरावती के, पास आकर
ढीठ किन्नरियाँ थिरकती चली जायेंगी
प्रिय किन्नरों के साथ, गूँजेगी सहास गिरा
स्वर्ग, मृत्युलोक और चौदहों भुवन-मध्य
देखो यही स्वर्ग-भ्रष्ट मूढ़ बलिराज है
दीन, दयापात्र, आह! सह्य नहीं और अब
यह अपमान, आह!

(मूर्च्छित होकर गिरता है)

इंद्र— मूढ़! युग-युग तू
गहन अतल के गगन-स्पर्शी मेरुओं की
शून्य तम-गुहा में निबद्ध विद्युतास्त्र से,
स्वर्ग-राज्य-लिप्सा-फल भोग क्षुद्र कीट-सा
जरा-मृत्यु-हीन, अग्नि-चंचु भूखे गरुड़-सा
युग-युग मेघों की कड़क मिस वज्र यह
विकल करेगा तुझे

विष्णु— बस करो देवराज!
शोभा नहीं देता यह मिथ्या अभिमान तुम्हें
दान लिये राज्य पर, विजय मिली जो आज
सत्य कह दूँ तो है पराजय सुरत्व की।
स्वर्ग के भले ही कहलाओ सम्राट् तुम

किंतु बसा स्वर्ग जो मनुष्य के हृदय में,
बलि का वहाँ पर प्रेम-राज्य अविजेय है।
धर्म पर हजारों इंद्रलोक न्यौछावर हैं,
हार वीरता की है वरेण्य कोटि जीतों से।
देवपति! राज्य पाताल-लोक का मैं आज
देता हूँ महान् इस सत्यव्रती वीर को,
द्वारपाल बनकर सुरक्षा हेतु आठों याम
शंख-चक्र-गदा-पद्म आयुध धरे हुए
खड़ा मैं रहूँगा सदा इसके मणि-द्वार पर।
और सुनो यह भी, निरस्त जब होगे तुम
इंद्रत्व-पद से मन्वंतर के अंत में
देवपति! इसे स्वर्ग-राज्य होगा प्राप्त तब,
तुमसे सुयोग्य जो, अनंत कल्प-काल तक
गूँजेगी महान् यह गाथा तीनों लोक बीच
देवराज बलि की बड़ाई करती हुई

(पटाक्षेप)